ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL

137

लोक चेतना का राष्ट्रीय मासिक

सबलोग

मार्च 2025 ● ₹ 50

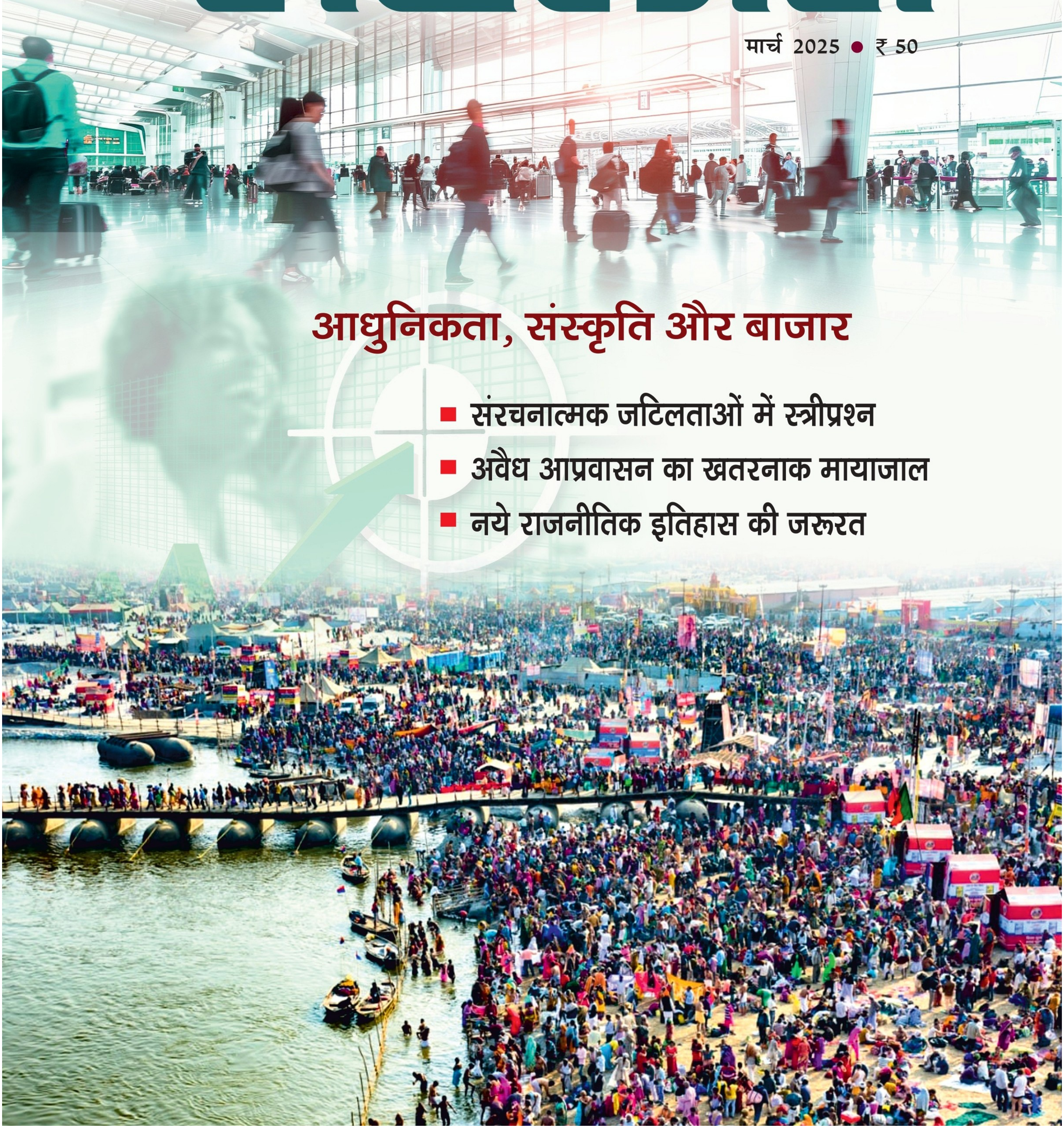

आधुनिकता, संस्कृति और बाजार

- संरचनात्मक जटिलताओं में स्त्रीप्रश्न
- अवैध आप्रवासन का खतरनाक मायाजाल
- नये राजनीतिक इतिहास की जरूरत

साहित्यिक पत्रकारिता के तीन दशक

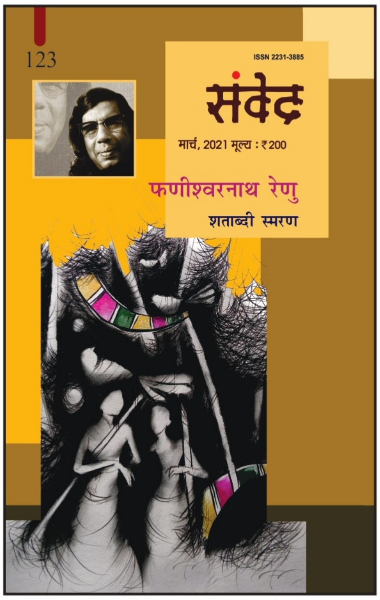

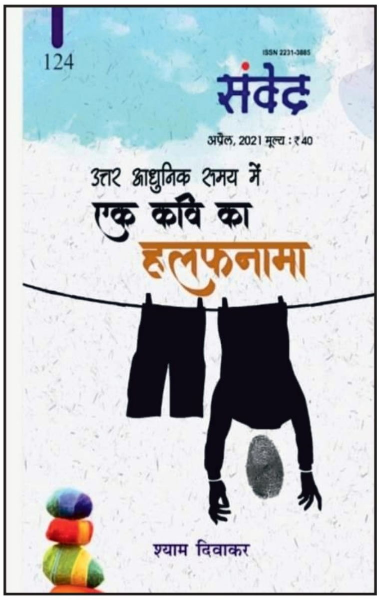

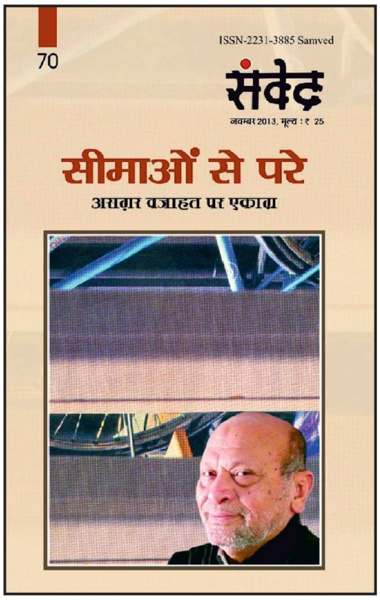

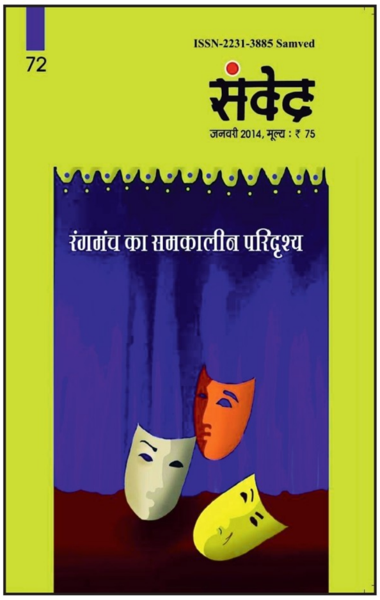

सम्पादक

किशन कालजयी

एक अंक : पचास रुपये

विशेषांक : दो सौ रुपये

B-3/44, Sector-16, Rohini, Delhi-110089
+91 8340436365
linkedin.com/company/samvedindia
samved.sablog.in
facebook.com/samvedmasik
samvedmonthly@gmail.com
twitter.com/samvedindiaInstagram
instagram.com/samvedindia

सबलोग-137

वर्ष 16, अंक 3, मार्च 2025

ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL
www.sablog.in

सम्पादक
किशन कालजयी
संयुक्त सम्पादक
प्रकाश देवकुलिश
राजन अग्रवाल
उप-सम्पादक
गुलशन चौधरी
ब्यूरो
उत्तर प्रदेश : शिवाशंकर पाण्डेय
बिहार : कुमार कृष्णन
झारखण्ड : विवेक आर्यन
समीक्षा समिति (Peer Review Committee)
आनन्द कुमार
रत्नेश्वर मिश्र
मणीन्द्र नाथ ठाकुर
मंजु रानी सिंह
सफदर इमाम कादरी
प्रमोद मीणा
राजेन्द्र रवि
मधुरेश
महादेव टोप्पो
विजय कुमार
आशा
सन्तोष कुमार शुक्ल
अखलाक 'आहन'
अभय सागर मिंज

सम्पादकीय सम्पर्क
बी-3/44, तीसरा तल, सेक्टर-16,
रोहिणी, दिल्ली-110089
+ 918340436365
sablogmonthly@gmail.com

सदस्यता शुल्क
एक अंक : 50 रुपये–वार्षिक : 600 रुपये
रजिस्टर्ड डाक खर्च समेत 1100 रुपये
सबलोग
खाता संख्या-49480200000045
बैंक ऑफ बड़ौदा,
शाखा-बादली, दिल्ली
IFSC-BARB0TRDBAD
(Fifth Character is Zero)

स्वामी, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी द्वारा बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089 से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिण्टर्स, 556 जी.टी. रोड शाहदरा दिल्ली-110032 से मुद्रित।

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।
पत्रिका अव्यावसायिक और सभी पद अवैतनिक।
पत्रिका से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायक्षेत्र दिल्ली।

संवेद फाउण्डेशन का मासिक प्रकाशन

आधुनिकता, संस्कृति और बाजार

विसंगति और विडंबना के दौर में : **सेवाराम त्रिपाठी** 4
आधुनिकता और भूमण्डलीकरण : **राजाराम भादू** 7
मरीचिकाएँ और उम्मीद की लालटेन : **ईश्वर सिंह दोस्त** 11
आधुनिकता के अन्तर्द्वन्द्व : **सुनीता सृष्टि** 13
अपसंस्कृति और उभरता बाजारवाद : **किरण मिश्र** 16
संस्कृति, बाजार और गाँधी : **श्वेता कुमारी** 18

सृजनलोक

तीन कविताएँ : **उपांशु,** टिप्पणी : **हृषीकेश सुलभ,** रेखांकन : **नूपुर अशोक** 20

विशेष लेख

संरचनात्मक जटिलताओं में स्त्रीप्रश्न : **सुप्रिया पाठक** 22

राज्य

बिहार / समसामयिक राजनीति और नदियों के सवाल : **राहुल यादुका** 26
झारखण्ड / पेसा पर बहस के आयाम : **विवेक आर्यन** 28
हरियाणा / डंकी रूट की कड़वी हकीकत : **अजय सिंह** 31

स्तम्भ

चतुर्दिक / लोकतन्त्र और संविधान की चिन्ता किसे है : **रविभूषण** 33
तीसरी घण्टी / जन्मशती पर लगा सत्ता का ग्रहण : **राजेश कुमार** 37
यत्र-तत्र / कविता में बस्तर : **जय प्रकाश** 40
देशान्तर / अवैध आप्रवासन का खतरनाक मायाजाल : **धीरंजन मालवे** 43
परती परिकथा / नये राजनीतिक इतिहास की जरूरत : **हितेन्द्र पटेल** 45
कविताघर / शम्बूक, तुम्हारा रक्त एक दिन फूटकर बाहर आएगा : **प्रियदर्शन** 48

विविध

जन गण मन / उच्च शिक्षा में सुधार की दिशा : **रसाल सिंह** 50
साहित्य / कृष्णा सोबती का स्त्री-विमर्श : **कुमारी उर्वशी** 53
शहरनामा / क्यूर-ट्रांस की अलग-अलग कहानी : **ममता** 56
संस्कृति / विकास के बरक्स आदिवासी संस्कृति : **सुखराम मुजाल्दे** 59
आयोजन / सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का अभियान : **रूपेश कुमार यादव** 60
सिनेमा / भेदभाव से जंग : **रक्षा गीता** 62
पुस्तक समीक्षा / संवाद की परम्परा का महत्त्वपूर्ण अध्याय : **दिव्यानन्द** 65
लिए लुकाठी हाथ / यदा-यदा ही धर्मस्य : **श्रीकान्त आप्टे** 66
रंगसाज / आग और मिट्टी के साथ आकार : **देव प्रकाश चौधरी** 67
आवरण : **शशिकान्त सिंह**

अगला अंक : कृत्रिम मेधा की चुनौतियाँ

विसंगति और विडम्बना के दौर में

सेवाराम त्रिपाठी

आधुनिकता, संस्कृति और बाजार को हमें जमाने के क्रूर, संवेदनाहीन और त्रासद स्थितियों के रूप में देखना चाहिए। यह है हमारे जमाने और समय का दुर्दान्त और खूँखार चेहरा। आधुनिकता बुरी नहीं होती और न ही संस्कृति। इन्हें हर तरह की सत्ताएँ कैसे इस्तेमाल करती हैं, यह इस पर निर्भर है। यह सब कुछ सत्ताओं के झूठे गुमान पर भी अवलम्बित है। हाँ, बाजार की दुनिया अलग है। उसकी असलियत और कारगुजारियाँ अलग हैं। जाहिर है कि हम आधुनिकता, संस्कृति और बाजार को कट्टरता, कठोरता, लूट-खसोट और अपार घृणा के रूप में विकसित होते हुए लगातार देख रहे हैं।

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
+919425185272
sevaramtripathi@gmail.com

''मानव जाति का आध्यात्मिक विकास जितना आगे बढ़ता है, उतना ही मुझे निश्चित लगता है कि वास्तविक धार्मिकता का वास्ता जीवन-मरण के भय और अन्धविश्वास से होकर नहीं जाता, बल्कि तर्क-सम्मत ज्ञान के संघर्ष से होकर जाता है।'' (अल्बर्ट आइंस्टीन)

विज्ञान ने अनेक सुविधाएँ उपलब्ध करा दीं। कुछ आस्थावानों ने, कुछ धर्म के मानने वालों ने कितनी दिक्कतें उठाते हुए महाकुम्भ में डुबकी लगायी। कुम्भ मेले की भगदड़ में जिनकी मौतें हुईं, उस पर कोई अफसोस नहीं जताया गया। कुछ जमे-जमाये तथाकथित धर्म के ठेकेदारों ने इसे भी लोक लिया। नारेबाजी देखें एक–'जो गंगा नहीं नहाएगा वो देशद्रोही है' दूसरा–भीड़ की भगदड़ में मरे लोगों के बारे में प्रचारित किया गया।' 'गंगा किनारे कोई मरेगा, वो मोक्ष पाएगा' न मरने वालों के प्रति कोई संवेदना है और न कोई अफसोस। एक विशेष प्रकार का आध्यात्मिक दिखावा जरूर सनसना रहा है। यह एक विडम्बना है–कहकर इसे हँसी में टाला भी नहीं जा सकता। संस्कृति का दिन-रात क्षरण निर्लज्जता और बाजार बनने के दौर में है। तथाकथित नारों के सन्दर्भ में जो प्रतिक्रियाएँ आयीं, वो क्षोभ प्रकट करती हैं। ऐसे प्रसंगों को गर्हित और निर्लज्ज मानती हैं लेकिन इस खोल के भीतर सत्ता-व्यवस्था का जो चेहरा छिपा हुआ है, वो सत्ता-व्यवस्था के अन्तर्विरोधों और मार्केटिंग का ही खूँखार चेहरा है। जिसमें अपनी असलियत को ढँकने की क्रूर कोशिश के रूप में इसे विकसित होते हुए देखा जा सकता है। कहना जरूरी है कि भाग्यवाद के कमण्डल में मोक्ष प्राप्त करने की और पुण्य कमाने की अनन्त दलीलों, सम्भावनाओं के साथ स्वर्ग का प्रवेश द्वार पाने का सपना भी देखा-दिखाया जा रहा है।

आध्यात्मिकता और असली धार्मिकता जब सूखे और कोरे कर्मकाण्ड में बदलने लगती है तब विज्ञान का जरूरी तौर पर संघर्ष, हस्तक्षेप और ज्यादा बढ़ जाता है। जाहिर है कि अन्धविश्वासों, पाखण्डों का उपयोग हमें जड़ता की ओर ले जाने की हमेशा कोशिश करता है। अब तो भारत ही नहीं प्रायः समूची दुनिया मूल्यों, आचरणों, नैतिकताओं, आदर्शों, ईमानदारी और मानवीयताओं से रिक्त होती जा रही है। हालाँकि जीवन और जीवन-मूल्यों को और हमारे समाज और समय को जड़ताओं, क्रूरताओं, कट्टरताओं और लम्पटताओं की गहरी खाई में फेंक दिया जाता है। हमारे समय में साम्प्रदायिक शिल्पकारों और कूढ़-मगज मनोविज्ञानियों की तादाद बढ़ती ही चली जाती है। उनकी चतुराईपूर्ण कार्रवाइयों ने जीवन-मूल्यों, नैतिकताओं और प्रविधियों का समूचा रस सोख लिया है। यह हम सभी के लिए विशेष चिन्ता की बात है।

बाजार का सर्वग्रासी रूप हमारे सामने है। हमारी सभ्यता, संस्कृति, सामाजिकता, साहित्य, कलाएँ, धार्मिकता, अस्मिता,

आकांक्षा, जिजीविषा, जीवन-मूल्य, संवेदनाएँ, राजनीति और अन्य माध्यम भी उसके संजाल और मोहपाश में आबद्ध हैं। बाजार अपने एक निश्चित एरिया भर में नहीं है बल्कि वो हमारे सामाजिक जीवन, घर-परिवार और बेडरूम तक पहुँच चुका है और तयशुदा बात है कि उसका तीव्र आकर्षण प्रायः सभी को बाँध लेता है। बहुत थोड़े से ही लोग बच पाते हैं, लेकिन उसके दबाव बने रहते हैं।

आधुनिकता, संस्कृति, सामाजिकता, धार्मिकता और साहित्य में पूरी तरह से बाजार फैल चुका है। क्या-क्या नहीं बिक चुका है और जिनके पास थोड़ा-सा जमीर, प्रतिबद्धता, साहस-संकल्प और प्रतिरोध बचा है, वे ही अनेक दिक्कतों में होने के बावजूद लगातार मुठभेड़ और मुकाबला कर पा रहे हैं। बाकी तो केवल तमाशबीन बने हैं। मुँह बाये खड़े हैं। प्रदर्शनों की होड़ लगी है। मेरी समझ में आधुनिकता और संस्कृति कोई पिकनिक स्पॉट नहीं हैं। यह कोई सैर करने का इलाका भी नहीं है। ज्यादातर लोगों को मैंने आधुनिकता को प्रदर्शित करते हुए ही देखता रहा हूँ। प्रायः सभी अपने अहंकार को ही उजागर करते हुए ही मिलते हैं। आधुनिकता जीवन-मूल्यों की वास्तविकता और प्रविधि में नहीं होती। ऐसा लगता है जैसे आधुनिकता का एक विशेष किस्म का हाँका पड़ा है। आधुनिकता के बरअक्स एक प्रश्न मुझे बार-बार मथता है कि एक खास किस्म के अन्धराष्ट्रवाद, धार्मिक कठमुल्लेपन और साम्प्रदायिक उन्माद की गतिविधियों के साथ एक वर्चस्ववादी मानसिकता ने मुसलमानों को घृणा का पात्र-भर नहीं बनाया बल्कि अछूत और त्याज्य भी बना दिया है। हमारी बहुआयामी अस्मिता बहुसंख्यकों के हित-साधन के चहले में डूब रही है। यह जो निरन्तर पुख्ता होता जा रहा सांस्कृतिक सुभीते में यात्रा कर रहा बाजारवाद है। यह फासीवाद, कर्मकाण्डवाद और तानाशाही मनोविज्ञान का विशिष्ट रूप है। यह हमारे समय में आधुनिकताबोध के साये में विस्तार पाता हुआ खंजर ही है, जो प्रगतिशील जीवन-मूल्यों को दफनाने में लगा है। इसलिए संवेदनहीनता की पैशाचिक छलनाओं में क्रूरता और नफरत के साथ काबिज होता जा रहा है।

आधुनिकता, संस्कृति और बाजार का क्षेत्र सीमित नहीं है बल्कि बहुत व्यापक भी है। उसके परिप्रेक्ष्य और परिक्षेत्र को कम नहीं समझा जाना चाहिए। इसकी सीमा केवल भारत-भर में नहीं है बल्कि समूची दुनिया के बड़े-बड़े इलाकों तक पहुँच चुकी है। आधुनिकता के नाम पर, संस्कृति के नाम पर और बाजार के नाम पर इतनी ठगी की गयी है और अनवरत ठगी की जा रही है, वह सब कुछ हमारे-आपके सामने है। यथार्थ का अपहरण कर लिया जाता है। मनुष्य की स्वतन्त्रता और जिजीविषा को खत्म करने के अवाध प्रयास होते हैं।

आधुनिकता और संस्कृति सचमुच में बड़े मोहक शब्द हैं। दोनों में बड़ा आकर्षण होता है। संस्कृति की हवाएँ हमें शक्तिवान बनाती हैं और जीने का राग पैदा करती हैं। यह एक विश्व-स्तर का फेनामिना है। देखने में तीनों अलग-अलग हैं लेकिन कार्रवाई में एकदम एक-दूसरे के पूरक और आपस में गुँथे-बिंधे हैं। वर्तमान समय में ये विद्रूपों से युक्त भी हो गये हैं बल्कि एक-दूसरे के मददगार। चेहराविहीन कबन्ध की तरह होते हुए भी स्वार्थों के भयानक संजाल में हैं। इन्होंने अवसरवाद की छायाओं में, अपने-आपको स्वार्थपरताओं के लिए शक्तिशाली बनाया है। आधुनिकता का एक बाना है। उसका विशेष अर्थ और सन्दर्भ है। उसका कई तरह से इस्तेमाल हो रहा है और प्रकटीकरण भी। हमारा वर्तमान समय अतीत की तुलना और परिप्रेक्ष्य में आधुनिक ही होता है। मुझे तो विचारक टायनबी का यह कथन डराता भी है लेकिन सावधान भी करता है कि ''भविष्य में और भी पूर्ण ज्ञान और माध्यम से सम्पूर्ण संसार एक ही सभ्यता के सूत्र में बँध जाएगा।''

आधुनिकता, संस्कृति और बाजार को हमें जमाने के क्रूर, संवेदनाहीन और त्रासद स्थितियों के रूप में देखना चाहिए। यह है हमारे जमाने और समय का दुर्दान्त और खूँखार चेहरा। आधुनिकता बुरी नहीं होती और न ही संस्कृति। इन्हें हर तरह की सत्ताएँ कैसे इस्तेमाल करती हैं। यह इस पर निर्भर है। यह सब कुछ सत्ताओं के झूठे गुमान पर भी अवलम्बित है। हाँ, बाजार की दुनिया अलग है। उसकी असलियत और कारगुजारियाँ अलग हैं। जाहिर है कि हम आधुनिकता, संस्कृति और बाजार को कट्टरता, कठोरता, लूट-खसोट और अपार घृणा के रूप में विकसित होते हुए लगातार देख रहे हैं। सत्ता-व्यवस्था की भूख का कोई अन्त नहीं होता, जिसकी सीमाओं का ढंग से निर्धारण भी नहीं किया जा सकता। और न कोई ऐसा फार्मूला दिखाई पड़ता है कि इसे परिवर्तित किया जा सके। इसके कहर को सीमित किया जा सके। तथ्य यह है कि इसे किसी सिद्धान्तबाजी में नहीं बल्कि होशो-हवास में देखने की आवश्यकता है। आधुनिकता, संस्कृति और बाजार की विरुदावली का अखण्ड गायन जारी है। नाम चाहे जो दे दीजिये। नाम देने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता। क्रूरता, नफरत और असंवेदनशील मुस्कुराहटों में उनकी यश-पताकाएँ फहरा रही हैं। मुक्तिबोध की कविता की ये पंक्तियाँ पढ़िये–''साम्राज्यवादियों के/ पैसों की संस्कृति/ भारतीय आकृति में बँधकर/ दिल्ली को/ वाशिंगटन व लन्दन का उपनगर/ बनाने पर तुली हैं !/ जन-राष्ट्र लोकायन/ जन मुक्ति आन्दोलन/ के सिद्धहस्त विरोधी/ ये साम्राज्यवादियों की पाँत में ही बैठे हैं/ शान्ति के शत्रुओं का प्राणायाम साधकर/ जनता के विरुद्ध घोर अपराध कर/ फाँसी-फाँसी के फन्दे की रस्सी से ऐंठे हैं।''

मैं आधुनिकता को जीवन के विकास के लिए बहुत जरूरी मानता हूँ। लेकिन वह आधुनिकता न तो केवल उत्साही हो और न किसी प्रकार मूल्यविहीन। आधुनिकता नदी के बहाव की भाँति होती है। आधुनिकता का काम मात्र जोश से नहीं चलता बल्कि उसका व्यवहार होश के द्वारा ही सहज सम्भव हो सकता है। आधुनिकता को आत्मसात करना शीघ्र ही नहीं होता। आधुनिकता का रास्ता अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और सड़ी-गली चीजों को त्याज्य करने से ही हो सकता है। आधुनिकता अतीत की छाती पर चढ़कर आती है। उसमें विवेक का बहुत बड़ा परिसर होना चाहिए। आधुनिकता का रिश्ता गतिशीलता से वैज्ञानिकता से और खुलेपन से ही सही ढंग से हासिल किया जा सकता है, चीख-चिल्लाहट, शोर से और अच्छी परम्पराओं को खत्म करके नहीं। आजकल कट्टर रूढ़िपन्थी और उग्रनिषेधवादी ही नहीं अव्वल दर्जे के पोंगापन्थी भी अराजकता के साथ आधुनिकता में शरीक हो गये हैं। हमारे पास मूल्य थे,

ईमानदारी, मूल्य, नैतिकता, आदर्श, निडरता और आत्मालोचन था। हम एक नया मनुष्य रचना चाहते थे लेकिन अमानवीयता ने उसे सभी ओर से छेंक दिया है। सृजनशीलता, सक्रियता और व्यावहारिकता के साथ किये गये नवाचार समाज और संस्कृति को और मानवीय विश्वासों को विकास की प्रक्रिया की ओर ले जा सकते थे लेकिन सत्ता-व्यवस्था पोषित और कॉरपोरेट घरानों के द्वारा संरक्षित किये जा रहे इरादों ने सभी को ठिकाने लगा दिया है। दुर्भाग्य से संस्कृति, सामाजिकता, वास्तविकता अपने वर्चस्व को कायम नहीं कर सकी और बड़ी तेजी से अपसंस्कृति का रूप ग्रहण नहीं कर सकी।

अन्धी धार्मिकता ने अन्धविश्वासों, पाखण्डों, विकृतियों, विरूपताओं और धूर्तताओं को ही पोषित किया। प्रयागराज का महाकुम्भ इसका साक्षात् उदाहरण है। आस्थाओं और धार्मिकता के नाम पर राजनीतिक रोटियाँ सेंकी जा रही हैं। सच को दबाया जा रहा है और परम झूठ के साथ एक पोंगा-पन्थी, कट्टर और धूर्तताओं से युक्त सामाजिक जीवन का निर्माण विराट पैमाने पर उत्सव की तरह किया जा रहा है। लोकतान्त्रिकता और स्वतन्त्रता का वध इसकी वास्तविकता का खुला बयान है। हमारा समय, समाज ही नहीं पूरा जीवन एक 'स्थायी डर की चपेट' में आ गया-सा लगता। स्वाभाविक रूप से हँसने-हँसाने की हिम्मत खोता जा रहा है। इस दौर में हम क्रूरता, कट्टरता, कठोरता और मानवता से खलास होते जा रहे हैं। संस्कृति के ऊपर अपसंस्कृति, बाजार और मूल्यहीनता, चमचमाहट और स्वार्थपरताओं का डेरा हो चुका है। संस्कृति के मूल तत्त्वों, मन्तव्यों और सद्गुणों का लगातार उल्लंघन ही अपसंस्कृति की दुनिया है। इसलिए संस्कृति का सांस्कृतिक विविधताओं, मूल्यों और नैतिकताओं का बहुत तेजी से क्षरण होता जा रहा है। यह दौर आधुनिकता, संस्कृति और बाजार का है लेकिन विज्ञान टेक्नोलॉजी और मुक्त बाजार इन्हीं के आस-पास हैं। लगता है कि अब संस्कृति के लिए कोई जगह ही नहीं बची। सब कुछ मुक्त है। हर चीज का कारोबार हो रहा है। साहित्य, संस्कृति, कलाएँ, धार्मिकता, हमारी अस्मिता और विरासत भी। हम जादुई झूठ के साम्राज्य में साँस ले रहे हैं। आधुनिकता के जबरदस्त आक्रमण में आदमी की कीमत काफी गिर गयी है। आधुनिकता और यथार्थ के बीच की खींची गयी लक्ष्मण रेखा निरर्थक हो गयी है।

यह कोई सामान्य स्थिति वाला समय नहीं है। यह एक दारुण, बेचैनी, वीभत्स, आडम्बर और घृणा का समय है। यह एक विसंगति-विडम्बना पूर्ण गपोड़ी समय भी है। हमारे जीवन में इतने दुःख व्याप्त हैं कि मौत, मॉब लिंचिंग और बलात्कार एक प्रहसन की तरह घटाये जा रहे हैं। बड़े स्तर पर असंख्य मौतें छिपा ली जाती हैं। कोरोना के दौर की मौतें गवाह हैं और बाद के दौर में सामूहिक बलात्कार खुल्लम-खुल्ला हो रहे हैं। ऐसी स्थितियाँ जब तब होती ही रहती हैं। सब कुछ क्षत-विक्षत होता जा रहा है। न्याय-व्यवस्था पंगु हो गयी है। सच बोलने का साहस खत्म होने की कगार पर है। हम सार्वजनिक रूप से झूठ की खेती लार्ज स्केल पर कर रहे हैं। हस्तक्षेप की स्थितियाँ समाज में कम से कमतर होती जा रही हैं। एक विशेष प्रकार के 'राष्ट्रीय स्वाँग' ने मनुष्यता को, हमारी अस्मिता और सांस्कृतिक विरासत को नेस्तनाबूद करने का काम ठेके से कर लिया है। इस अवसर पर कृष्णा सोबती का एक निबन्ध याद कर रहा हूँ, जिसका शीर्षक है–'राष्ट्र की साहित्यिक संस्कृति नागरिक समाज की थाती है' उनके शब्द हैं–''हम यह न भूलें कि हमारी संस्कृति का प्रमुख पक्ष विचार-स्वातन्त्र्य ही रहा है। यह तब भी मौजूद रहा, जब हम दूसरों के अधीन थे। विचार की इस लम्बी प्रक्रिया ने ही भारतीय दर्शन और चिन्तन को विशेष बनाया है। यही भारतीय संस्कृति और जीवन शैली का मुखड़ा है। ''विभिन्न समाजों के प्रभावों को आत्मसात करने की स्वभावगत क्षमता और लचक ने भारतीय संस्कृति को सांस्कृतिक घनत्व प्रदान किया है।''

हम देख रहे हैं कि इधर अधकचरे, अधकुचरे और ठगी के मनोविज्ञान ने एक संगठित संस्कृति के बाजार का आकार ग्रहण कर लिया है। जिसे तथाकथित सत्ताएँ पाल-पोष रही हैं। उदाहरण के लिए अनेक में से तात्कालिक रूप से उभरे दो नारों का जिक्र कर रहा हूँ। प्रयागराज महाकुम्भ के सन्दर्भ में ये विज्ञापन के रूप में भी रेखांकित और प्रचारित हुए हैं। सरकारी विज्ञापनों और तथाकथित नकली धर्म अन्धविश्वासियों ने पुण्य प्राप्त करने और स्वर्ग कमाने के निरन्तर प्रलोभनों की एक लम्बी श्रृंखला बना दी। वैसे भी हमारा देश आस्थाओं, मूल्यों, नैतिकताओं और विश्वासों में जीने वाला रहा है। अमीरजादों को छोड़िये। पुण्य कमाने वाले लोग कई वर्षों से माघ मेले में शामिल हो रहे हैं। इस 144 वर्षों बाद आने वाले महाकुम्भ ने आस्थावानों को लगभग पगला दिया है। रीवा का ही एक उदाहरण दूँ। एक ऑटो रिक्शा चालक अपनी चाची और उनकी दो परिचितों को लेकर प्रयागराज गया था। भगदड़ में वो तीनों महिलाएँ कहाँ गयीं। जीवित हैं या नहीं? एक दिन कई तरह की घोषणाओं को करवाने के बाद रोता-पीटता लौट आया क्योंकि वो अपने बाल-बच्चों को भूखा कैसे छोड़ देता? उनकी पढ़ाई को कैसे स्थगित कर देता? अब रोने-कलपने के अलावा उसके पास कोई विकल्प ही नहीं है।

मुझे लगता है कि आधुनिकता और संस्कृति किसी भी सूरत में सुविधा की वस्तुएँ नहीं हैं लेकिन इन्हें नजरअन्दाज भी नहीं किया जा सकता। आधुनिकता का रिश्ता गतिशीलता से होना चाहिए, जीवन-मूल्यों के चतुर्दिक विकास-सी, किसी वेश-भूषा से नहीं। हँसी आती है जब वेश-भूषा से किसी की पहचान करने की छद्म कोशिश की जाती है। हमारे देश में यह धारावाहिक ढंग से हैंडलिंग किया जाता रहा है। जाली एल.एल.बी. फिल्म की अदालत का एक दृश्य याद कर रहा हूँ जब हत्या और हत्याकाण्ड छिपाने के लिए किसी मुसलमान को हिन्दू में बदल दिया जाता है। हमारे यहाँ मॉब लिंचिंग के मामलों में मुसलमान विशेष रूप से रेखांकित किये जा रहे हैं। यह एक तरह की अदला-बदली का हिस्सा ही रहा है। इस बदले हुए समय में बहुत कुछ हो रहा है। आइंस्टीन ने बताया था कि समय और स्थान एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अपने तईं एक विशेष चीज रेखांकित करना जरूरी है कि प्रदूषण सिर्फ हवा का नहीं है बल्कि मनोविज्ञान का भी है और क्रूरताओं-कट्टरताओं का भी। ■